शोध मंथन, 2018 ISSN: (P): 0975-5255, (e): 2454-339X, Impact Factor 5.463 (SJIF)
UGC Approved Journal No. 40908

नागार्जुन के कथा साहित्य में वैयक्तिक स्तर की मानसिक समस्याओं का अंकन

डॉ० सरिता वर्मा
एसोसिऐट प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष
मेरठ कॉलिज, मेरठ
ईमेलः vermasarita051417@gmail..com

सारांश

साहित्यकार समाज में होने वाले परिवर्तन–प्रभाव को बराबर भोगता और जीता है। अतः वही अनुभव, यथार्थ उसकी कृति, विषयवस्तु बनती चली जाती है। यथार्थपरक विसंगतियों की त्रासदी से त्रस्त होकर तभी उसको प्रकट कर समाज के कर्णधारों को अवगत कराता है। वह नैतिकता व अनैतिकता के रूप को प्रकट करके होने वाली समस्याओं से छुटकारा दिलाने की चेष्टा करता है क्योंकि नैतिकता के अमूल्य परिवर्तन की माँग करता है कि जहाँ पर उसकी समस्याओं का समाधान हो जाए।

शोध पत्र का संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार हैः

डॉ० सरिता वर्मा

नागार्जुन के कथा साहित्य में वैयक्तिक स्तर की मानसिक समस्याओं का अंकन

शोध मंथन, जून 2018,
पेज सं0 159–163

Article No. 24
http://anubooks.com?page_id=581

कथा–साहित्यकार नागार्जुन ने भी अपनी रचनाओं में मानव त्रासदी की विषय–वस्तु को आधार बनाया है। ऐसी सामाजिक कुव्यवस्था के प्रति करारा व्यंग्य भी किया है। इस बदलते सामाजिक परिवेश से मानवीय संदर्भों में जो परिवर्तन हुआ उससे जीवन मूल्य भी प्रभावित हुए हैं। आधुनिक पीढ़ी उस मानसिकता का शिकार नहीं होना चाहती जिसके अंतर्गत पुरातन पीढ़ी अपना जीवन–यापन कर रही थी। सदियों से चली आ रही परम्परा को इसलिए ढोह रहे हैं कि उनके मानवीय गुणों को आघात न पहुँचने पाए। इसकी भी कोई सीमा निश्चित नहीं है। कहाँ तक इस परम्परा के अभिशाप को लेकर चलते रहेंगे। नागार्जुन ने वर्तमान युवा पीढ़ी की वैयक्तिक समस्याओं पर अपनी लेखनी चलाई। पुरातन पीढ़ी व युवा पीढ़ी की सोच–विचार में नया परिवर्तन आ रहा है। दोनों की व्यक्तित्वों की टकराहट से एक नई समस्या का जन्म होता है। जब उनको मनचाहे साथी के साथ विवाह करने से रोक दिया जाता है तब वह मानसिक कुंठित अवस्था की स्थिति में आ जाते हैं। सम्पूर्ण जीवन मानसिक संत्रास को भोगते हुए गुजरता है। मानसिक संत्रास की स्थिति का चित्रण नागार्जुन के साहित्य में बराबर हुआ है। वैयक्तिक स्तर पर समस्याएँ न उत्पन्न हों। इसके लिए पारिवारिक दायित्व बोध के नीचे कोई पुरूष दबता जाता है, तब अवश्य ही उसकी मानसिकता विद्रोहात्मक रूप ले लेती है। देखिए– ''**अचानक दीनानाथ की आँखें फैल गई तथा विचार उसके दिमाग को झनझना गया। पिछले दस वर्षों से मैंने एक भी फिल्म नहीं देखी क्यों भला? बच्चे और उसकी माँ ने तो अभी पिछले ही साल पड़ोसी के साथ सिनेमा देखा है। एक मैं हूँ जिसकी जिंदगी में कोई उलट–फेर नहीं। न आनंद न उल्लास। शंभू की माँ के पास अच्छी साड़ी नहीं है तो क्या मेरे पास कोट है? यही फटा कोट पिछले पाँच वर्शों से बदन पर झूल रहा है– शुह। कैसा बदरंग लगता है क्या परिवार की जिम्मेदारियों के सिवाय अपने प्रति मेरी कोई भी जिम्मेदारी नहीं है। इस तरह से मैं कब तक घिसटता रहूँगा? क्या ये नौ रूपये मैं अपने इस्तेमाल में नहीं ला सकता? तनख्वाह की कुल रकम तो आखिर शम्भू की माँ के हवाले कर ही दूँगा, फिर झिझक काहे की? अब ये नौ रूपये अपने मुताबिक खर्च करूँ।**''[1] यहाँ पर मानसिक संत्रास को दीनानाथ इसलिए भोग रहा है कि एक ओर तो वह परम्परा के अंतर्गत रहकर पत्नी व बच्चों के साथ विश्वासघात नहीं करना चाहता और दूसरी ओर वह स्वतंत्रता भी चाहता है जिससे वह अपनी मर्जी से अपनी इच्छा को पूर्ण करें। पत्नी व बच्चों पर अटूट विश्वास है, उनके प्रति दायित्व का बोध है इसलिए उनकी जिम्मेदारियों से भाग भी नहीं सकता इसलिए वह आवश्यकताओं की पूर्ति न कर समस्या को भोगने के लिए तैयार है। वह इसी आचार–विचार के तालमेल में ही घुटता रहता है।

व्यक्ति किसी भी प्रकार की परतन्त्रता को स्वीकार नहीं करता। वह सदैव स्वतन्त्रतापूर्वक जीवन जीना चाहता है। यह स्वतन्त्रता मानसिक और शारीरिक दोनों तरह की होती है। अतः वह अपनी भावनाओं, विचारों पर किसी अन्य के बंधनों को स्वीकार नहीं करता है। इस सन्दर्भ में **डॉ० लालचन्द गुप्त 'मंगल'** की यह टिप्पणी सारगर्भित प्रतीत होती है– ''**मनुश्य अपने विषय में सोचने, समझने, विचारने, जानने, निर्णय लेने और कार्य करने के लिए पूर्ण स्वतन्त्र**

है। कोई भी क्या सोचता समझता है और क्या निर्णय लेकर कार्य करता है। इस सबके लिए वह पूर्णतः स्वतन्त्र है। उसके चयन में किसी अन्य व्यक्ति को हस्तक्षेप करने का बिल्कुल कोई अधिकार नहीं है। यदि कोई व्यक्ति किसी भी मनुष्य के अधिकारों और निर्णयों के संबंध में हस्तक्षेप करता है तो उसे यह बात सहन नहीं हो सकती।''[2]

जब मानवीय व्यक्तित्व के अधिकारो की अवहेलना की जाती है तो वह परस्पर असहयोग करने लगता है। जहाँ पर समष्टिगत भावना न हो तब निश्चित रूप से मानसिकता में क्षोभपूर्ण भावना असहयोग उत्पन्न करती है। यह समस्या तब तक रहती है जब तक हम बंधनों से पूर्णतः मुक्त नहीं हो जाते हैं। प्रत्येक प्राणी को मानसिक स्तर की समस्याओं से समष्टिहित की भावना ही उभार सकती है इसलिए समष्टिहित होना अनिवार्य है, तभी उसे अधिकारों की प्राप्ति हो सकती है। जिससे वह वैयक्तिक स्तर की समस्याओं का समाधान पाने की ओर अग्रसर होगा। लेकिन आज की युवा पीढ़ी ने मानवतावाद को एक नए सिरे से देखना शुरू कर दिया है। मानवतावाद के स्थान पर वे अपने अधिकारों की माँग को प्रमुखता दे रहे हैं। **नामवर सिंह** का इस संदर्भ में कथन है कि ''**आज दयाशील मानवतावाद के स्थान पर अपने अधिकारों की माँग की जाने लगी और इस प्रकार मानवतावाद ने नया मोड़ लिया अथवा उसे नया मोड़ लेना पड़ा।**''[3] इस नये मोड़ को आज की युवा पीढ़ी अपनाने में विश्वास कर रही है कि यहाँ पर समानता का कोई न कोई आधार नजर आ रहा है। वह वर्तमान विसंगतियों को भोगते हुए एक साथ दिखलाई पड़ते हैं।

नागार्जुन के साहित्य में स्त्री–पुरूष पुरातन पद्धति के अन्तर्गत जीवन जीते हुए घुटन–सी महसूस करते हैं क्योंकि यह तभी होता है जब उनकी मानसिकता में एक–दूसरे के प्रति भेदभाव उत्पन्न हो और उनसे जबरदस्ती अपनी आज्ञाओं का पालन कराते हैं इसलिए मानसिक स्तर की संवेदना भी एक स्तर की होनी चाहिए तभी स्त्री–पुरूष अपने जीवन को अति प्रसन्नता से व्यतीत कर सकते हैं अथवा वह भटकते रहते हैं। कभी–कभी परिस्थितिवश वे इस मानसिक स्थिति को स्वीकार करते हैं और अवसर आने पर वहाँ से निकल भाग खड़े होते हैं। तब जाकर कहीं इस संत्रास भरी मानसिकता से छुटकारा पाते हैं। **नागार्जुन** ने अपने उपन्यास '**कुम्भीपाक**' में इसी समस्या को दृष्टिगोचर किया है, जहाँ ममता पत्र के द्वारा भुवन को समझाते हुए लिखती है कि ''**घबराकर शादी न कर लेना भुवन, न किसी आश्रम में भर्ती होना। *** मुझे लगता है कि तुम समाज की इस कुम्भीपाक नरक से निकलकर नई दुनिया के समझदार लोगों के बीच पहुँच गई हो, जी करता है कि तुम्हें बेटी कह के पुकारूँ।**''[4]

ममता मानसिक रूप से नाटकीय जीवन जीने के लिए बाध्य है। वह समाज की ऐसी परिस्थितियों में फँसी है जहाँ से वह निकलना तो चाहती है किन्तु सामाजिक बंधन, मान–मर्यादाएँ उसको ऐसा करने से रोकती है। ममता जैसी अनेक स्त्रियाँ हैं जो सामाजिक बंधनों में बँधकर स्वयं के जीवन को स्वाहा कर देती है। आश्रम और मठों की स्थापना इसलिए की जाती है कि यहाँ पर सताई गई स्त्रियों को कुछ राहत दी जा सके। उनके दुःखों को कम

किया जा सके और उनको जीवन जीने की नई राह दिखाई जा सके। किन्तु इन स्थानों पर भी ममता जैसी स्त्रियों को मानसिक और शारीरिक शोषण ही झेलना पड़ता है। वह चाहकर भी इन सब से मुक्ति नहीं पा सकती। संभ्रान्त समाज में कोई भी ऐसा पुरूष नहीं जो ममता जैसी समाज द्वारा प्रताड़ित स्त्री की रक्षा कर सके, उसके साथ विवाह कर सके। वह जहाँ भी जाती है पुरूष द्वारा छली जाती है ऐसी स्थिति में स्त्री **''सामाजिक यथार्थ की प्रवृत्ति से उपेक्षित होने लगती है।''** [5]

'इमरतिया' उपन्यास में भी **नागार्जुन** ने मस्तराम के माध्यम से मानसिक पीड़ा को चित्रित किया है। वह इमरतियाँ के बारे में सोच रहा है कि वह मठ में अनेक कष्ट भोग रही है किन्तु उसे वहाँ से बाहर निकालने वाला कोई नहीं जिससे वह उस नाटकीय जीवन से बाहर निकल स्वयं के लिए जी सके। कम से कम ऐसा कोई तो हो जो इमरतियाँ का हाथ थामकर उसे अपनी बनाए और वह इस दर्द से, मानसिक पीड़ा से मुक्त हो जाए। **''काश! कोई माई का लाल इमरतियाँ को जमनिया से भगाकर ले जाता और हमेशा के लिए नारी आजाद हो जाती।''**[6] यहाँ इमरतियाँ के जमनिया से भागने की इच्छा रखना उन सभी स्त्रियों के प्रति मस्तराम की मानसिकता को दर्शाता है जो इस तरह की मानसिक यातना झेलती है। वह नारी की मानसिक पीड़ा को गहनता से महसूस करता है।

वैयक्तिक स्तर पर समस्याएँ अन्दर ही अन्दर मनुष्य को कचोटती रहती है, जिससे वह आत्महीनता का भाव महसूस करने लगता है। वह उन सभी समस्याओं के समाधान हेतु प्रयास करता है। **'उग्रतारा'** में इसी तरह की समस्या की ओर इशारा करते हुए **नागार्जुन** ने लिखा है कि **''आपकी छाया में आठ महीने रही हूँ। मन ही मन आपको पिता और चाचा मानती रही हूँ और आगे भी वैसा ही मानती रहूँगी मैं मजबूर थी इसी से आपको धोखा दिया। सिपाही जी आप मुझे सारा जीवन याद रहेंगे।''** [7]

सिपाही जेल से रिहा कराने में उसकी मदद करता है जिसके चलते वह सिपाही के लिए एक आदर भाव रखती है लेकिन वह सहारा है जिसका फायदा उठा सिपाही उसके साथ जबरदस्ती विवाह कर लेता है। वह सिपाही उसके बाप की उम्र का है। वह जानता है कि वह उसकी पशुता को सहन अवश्य करेगी क्योंकि वह वहाँ से भागकर जाएगी भी कहाँ? उस स्त्री को वह अपनी 'काम इच्छाओं' को पूर्ण करने का साधन–मात्र के लिए संबंध स्थापित करता है। वह स्त्री मानसिक स्तर पर इस संबंध को स्वीकार नहीं कर पा रही है। वह मजबूर है, परिस्थितिवश सिपाही की पशुता को स्वीकार करने के लिए क्योंकि आत्मिक स्तर पर वह किसी अन्य पुरूष को प्रेम करती है।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि नागार्जुन के साहित्य में वैयक्तिक समस्याओं को बखूबी चित्रित किया गया है। वैयक्तिक समस्या के हर पहलु पर लेखक ने अपनी लेखनी चलाई है। लेकिन मानसिक समस्याओं के चित्रण में नागार्जुन ने गहन आत्मबोध का परिचय दिया है। कहानी हो या उपन्यास नागार्जुन ने अपने पात्रों के माध्यम से वैयक्तिक समस्याओं को दर्शाने के साथ–साथ उनके समाधान खोजने का भी प्रयास किया है।

सन्दर्भ

1. नागार्जुन– विष मंजर (कहानी) योगी, मार्च–1955
2. डॉ० लालचन्द गुप्त 'मंगल'– नयी कहानीकार अस्तित्ववाद का प्रभाव, पृ० 152
3. नामवर सिंह– आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ, पृ० 89
4. नागार्जुन– कुम्भीपाक, पृ० 112
5. डॉ० रमेश कुन्तल मेघ– क्योंकि समय एक शब्द है, पृ० 282
6. नागार्जुन– इमरतियाँ, पृ० 54
7. नागार्जुन– उग्रतारा, पृ० 123